Review Of Research
Vol.1,Issue.IV/Jan; 12pp.1-4 भारत के पतन में जाति का योग ISSN:- 2249-894X

Research Papers

भारत के पतन में जाति का योग–लोहिया की ऐतिहासिक दृष्टि

अशोक अहिरवार

एसोसिऐट प्रोफेसर इतिहास विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विष्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सारांश :–

कोई भी देश गिने–चुने राजाओं, नेताओं और देशद्रोहियों के कारण गुलाम नहीं होता, गुलाम वह तब होता है जब उस देश की बहुसंख्यक जनता राजकार्यों से उदासीन हो जाती है और सच पूछा जाये तो कहीं भी जनता उदासीन नहीं होती, बना दी जाती है। हिन्दुस्तान भी तभी गुलाम हुआ जब जातिप्रथा के कारण यहां ६०ः जनता को राज कार्यों से उदासीन बना दिया गया। इस उदासीनता का उल्लेख करते हुए अंग्रेज विजेता राबर्ट क्लाइव ने लिखा है कि 'जब हम लोग सिराजुद्दोला को बंदी बनाकर कलकत्ता के बीच बाजार से गुजर रहे थे तो हमारे साथ छः–सात सैनिक ही थे और बाजार में सड़क के किनारे खड़े होकर हजारों लोग यह दृश्य देख रहे थे। अगर वे लोग एक–एक पत्थर भी हम लोगों पर फेंकते तो हम लोगों का अता–पता भी नहीं लगता।'

मूळशब्द :– ब्राह्मण–संस्कृति, ब्राह्मण–सामंतवाद, गुलामी का तमगा, गुलामी का झब्बा, जाति बीमा, विशेषाधिकार, दासता, समन्वय, सामाजिक समता।

प्रस्तावना :-

I

भारतीय राजनीति में विपक्ष के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. राममनोहर लोहिया राजनैतिक बाद में थे, पहले वे समाजवादी थे। समाजवादी पश्चिमी देशों को देखने समझने का उन्हें मौका मिला था अपने अनुभवों और भारत की तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उन्होंने समाजवाद की कल्पना की थी उनके समाजवाद का सामाजिक समता से घनिष्ठ संबंध था। लोहिया ने अपने समाजवादी चिंतन में भारत में प्रचलित जाति प्रथा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में गहन विचार किया है। उनका मानना हे कि ''जाति–प्रथा, ब्राह्मण–संस्कृति, ब्राह्मण–सामंतवाद और पूँजीवाद की

आधार भूमि है'' जाति की गहरी पकड़ ने कर्म के प्रति अनास्था पैदा की है इससे देश का इतिहास भी जकड़कर रह गया है।[१]

हमारे देश की परम्परायें विशिष्ट हैं। संसार का यह शायद अपने ढंग का पहला देश है जहां इतने उग्र रूप में इस कदर घोर असमानताओं का साम्राज्य है। रहन-सहन, आचार-विचार और रीति-रिवाजों में असमानतायें हैं। घोर असमानताओं से भरा भारत देश सचमुच विश्व का विचित्र देश है। इन्हीं असमानताओं में सबसे अधिक विनाशकारी 'जाति-प्रथा' है। लोहिया ने बड़ी दक्षता से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि हिन्दुस्तान की गुलामी और पराभव के मूल में भारतीय समाज की अपनी कमजोरियां रही हैं। उनका कहना था कि हिन्दुस्तान में ऐसी कौन सी कमी है जिसके कारण वह बार-बार गुलाम होता रहा है। दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है जिसने सात सौ वर्षों से भी ज्यादा गुलामी भोगी हो। वे कहते थे 'भारतीय समाज में वे ऐसे कौन से तत्व हैं, जिनके सबब दुनिया में बार-बार गुलामी का तमगा, गुलामी का झब्बा अगर किसी को मिला तो हिन्दुस्तान को मिला। इसका कारण क्या शौर्य और पराक्रम का अभाव है? कष्ट सहने की क्षमता और त्याग भावना की कमी है? अगर इनकी कमी नहीं रही तो फिर आखिर क्यों यह देश विदेशी आक्रमणकारियों के सामने टिक नहीं पाया? अक्सर ही लोग यह कह बैठते हैं कि हिन्दुस्तान की गुलामी के मूल में राजाओं की फूट ही मुख्य कारण था। पर इतिहास के सूक्ष्म अध्ययन के बाद लोहिया इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई भी देश गिने-चुने राजाओं, नेताओं और देशद्रोहियों के कारण गुलाम नही होता, गुलाम वह तब होता है जब उस देश की बहुसंख्यक जनता राजकार्यों से उदासीन हो जाती है और सच पूछा जाये तो कही भी जनता उदासीन नहीं होती, बना दी जाती है। हिन्दुस्तान भी तभी गुलाम हुआ जब जातिप्रथा के कारण यहां ९०ः जनता का राज कार्यों से उदासीन बना दिया गया। इस उदासीनता का उल्लेख करते हुए अंग्रेज विजेता राबर्ट क्लाइव ने लिखा है कि 'जब हम लोग सिराजुद्दोला को बंदी बनाकर कलकत्ता के बीच बाजार से गुजर रहे थे तो हमारे साथ छः-सात सैनिक ही थे और बाजार में सड़क के किनारे खड़े होकर हजारों लोग यह दृश्य देख रहे थे। अगर वे लोग एक-एक पत्थर भी हम लोगों पर फेंकते तो हम लोगों का अता-पता भी नहीं लगता।[२]

उनका आगे कहना है कि 'सच्चाई यह है कि जब-जब इस देश में वर्ण-व्यवस्था को शिथिल करने वाले आंदोलन हुए हैं तब-तब न केवल यह देश बाहरी आक्रमण को रोकने में सफल हुआ वरन् इसका राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास भी हुआ।[३]लोहिया का मानना था कि हिन्दुस्तान के लोगों की संकल्पहीनता अर्कमण्यता, सुस्ती और स्वार्थपरक अवसरवादी चरित्र के लिए यदि कोई एक कारण जिम्मेदार है तो वह है हजारों सालों से चली आने वाली वर्ण-व्यवस्था।

डा. लोहिया माना करते थे कि जाति ही हिन्दुस्तानी जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है। जो लोग सिद्धांत रूप में इस बात को नहीं मानत वे भी व्यवहार रूप में इससे सहमत हैं। जन्म-मरण, शादी-भोज और अन्य मामलों में भी जाति ही प्रमुख कारण हुआ करती है जीवन के इन सबसे महत्वपूर्ण मौकों पर एक ही जाति के लोग मददगार या सहभागी बनते हैं और दूसरी जाति का पड़ोसी या मित्र भी तमाशाई ही बना रहता है।[४]

जाति एक ऐसी संस्था रही है जिसका रिश्ता अलग-अलग शिल्पों और ज्ञान की अन्य विधाओं से रहा है। उत्पादन की अलग-अलग प्रणालियों और सम्मान भी अलग-अलग जातियों से जुड़े रहे हैं। कायदे से यह चीज लोगों की कुशलता बढ़ाने, संवारने और उसे संगठित करने (ट्रेड यूनियन की तरह) का काम करती और इसने कुछ हद तक किया भी। लेकिन जिस दिन इन सबका वर्गीकरण हो गया और कौन ऊपर है कौन नीचे, यह तय हो गया, उस दिन यह पूरी व्यवस्था समाज को तोड़ने और एक जाति के द्वारा दूसरे का शोषण करने का हथियार बन गयी और उसने समाज को उसकी पूरी प्रतिभा को काफी नुकसान पहुंचाया। बुद्धि का काम करने वाले और शारीरिक श्रम के बीच बढ़ती खाई ने धार्मिक, आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग को कुंठित किया। इसने समाज में बदलाव की प्रक्रिया को भी रोककर सड़न पैदा की। करोड़ों लोगों

को शासन–व्यवस्था, राजभाषा, संस्कार, धार्मिक अनुष्ठानों बगैरह से दूर रखा। उनमें हीनभावना भरी। उन्हें पिछड़ा और हरिजन नाम दे दिया गया।

लोहिया जाति को दुनिया का सबसे बड़ा बीमा मानते थे। जिसके लिए किसी प्रकार का प्रीमियम देने की आवश्यकता नहीं होती है। उनका कहना था कि भारत जैसी जड़ जाति कहीं नहीं मिलती।[४]लोहिया जातिवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुए मानते थे कि अनेक सुधारवादी आंदोलनों के बावजूद 'द्विजों को छोड़कर सारी जातियां व्यक्तित्व विहीन बना डाली गयी हैं। और यही वह दल–दल है जो सारी भारतीय समाजव्यवस्था मे व्याप्त है। उन्होंने जाति संबंधी विशेषाधिकारों पर आक्रमण किया। वे उच्च वर्ग के तीन विशेषाधिकारों का उल्लेख करते थे– जाति, सम्पत्ति और भाषा। उनका कहना था कि दौलत, बुद्धि के हिसाब से समाज में गिरोह बनते हैं, जिन्हें वर्ग कहते हैं।'[६]सर्वणों के विशेषाधिकार पर आक्रमण करना लोहिया के समाजवादी चिंतन का प्रमुख विषय था। लोहिया नीची जातियों की चुप्पी तोड़ना चाहते थे। क्योंकि उनका विचार था कि 'हिन्दुस्तान में क्रांति न होने का सबसे बड़ा कारण बताना हो, दर्शन के रूप में तो वह है दासता का समंवय बगैरह। लेकिन अगर एक संस्था या संगठन के रूप में बताना हो तो वह जाति–प्रथा है, वर्ण–व्यवस्था है इसमें कोई शक नहीं। आर्थिक गैर बराबरी और सामाजिक गैर बराबरी दोनों को मिलाकर हमने देश में इतनी जबरदस्त गैरबराबरी की है कि क्रांति हो तो कैसे हो, क्रांति वहां हुआ करती है जहां तुलनात्मक गैरबराबरी हुआ करती है या कम गैरबराबरी होती है।[७]

II

लोहिया की स्पष्ट धारणा थी कि समाजवादी आंदोलन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि जाति–प्रथा की जंजीरे नहीं टूटती। लोहिया जिस समाजवाद की स्थापना चाहते थे उसमें जाति उन्मूलन एक प्रमुख आधार है। वे ऐसा मानते है कि देश की छोटी जातियों को हर ढंग से सशक्त बनाया जाये। तो उच्च वर्ग के विशेषाधिकार खत्म किया जा सकते हैं। और एक नयी समाजवादी व्यवस्था स्थापित की जा सकती है। उनका स्पष्ट मत है कि 'जो आदमी हिन्दुस्तान की जाति प्रथा को अपने दिमाग में नहीं रखेगा, जो कि एक वस्तुस्थिति है, एक खास बात है और हरेक चीज के लिए वह नींव है, वह कभी भी पूंजीवाद समाजवाद के चक्कर को नहीं समझ पायेगा।'[५] लोहिया ने 'जाति प्रथा' नामक अपनी पुस्तक में भारतीय जातिप्रथा के कारणों पर विस्तार से विचार किया और बताया कि भारतवर्ष की जाति–प्रथा पर आधारित वर्ग किस प्रकार सारे देश को तोड़ रहे हैं। जातियों के उन्मूलन के माध्यम से उन्होंने वर्ग–उन्मूलन की बात की। और भारतीय समाजवादी चिंतन को यह उनका मौलिक प्रदेय है। 'जाति हटाओ' अथवा 'जाति तोड़ो' आंदोलन की लोहिया के समता सिद्धांत का केन्द्र बिन्दु माना जाता है। वे 'जाति तोड़ो' आंदोलन को व्यापकता देते हुए अन्य समुदायों को भी सम्मिलित करते हैं। औरत, शूद्र, हरिजन, मुसलमान और आदिवासी समाज के इन पांच दबे हुए समुदायों को उनकी योग्यता जैसी भी हो, उसका लिहाज किये बिना उन्हें नेतृत्व के स्थानों पर बैठाना इस आंदोलन का लक्ष्य होगा। जाति का नशा करके ही उन्हें स्वाभिमानी बनाया जा सकता है, और यह निसन्देह आर्थिक उन्नति के साथ–साथ होना चाहिए तभी उन्हें पूरे आदमी के लायक और जागरूक जनता बनाया जा सकता है।[५५] जिससे देश की आत्मा खिल उठेगी तथा समाज व देश की रक्षा और क्रियाशीलता ग्रहण करेगा राजकार्यों की उदासीनता और देश के संचलान से लोगों का मोह भंग हमें फिर गुलामी की अंधी गलियों में डाल सकता है यह भी उल्लेखनीय है कि अब साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी कहे जाने वाले देशों ने अपने काम में सुधार कर लिया है पहले वे जमीनों पर अपना साम्राज्य स्थापित करते थे परन्तु अब जेबों पर, जिससे स्थिति और भी जटिल हो गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

१. राजेन्द्र मोहन भटनागर, समग्र लोहिया, किताब घर, नई दिल्ली, १९८२, पृ. १५६.

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, १४ अक्टूबर १९९०, पृ. १२.

३. प्रभात खबर पत्रिका, लखनऊ, २५ मार्च १९९०, पृ. २.

४. राममनोहर लोहिया, जाति प्रथा, समता प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पूर्वी लोहानीपुर, पटना संस्करण, १९७८, पृ. १००,

५. ओंकार शरद, लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–२, संस्करण १९७८, पृ. १३५.

६. राममनोहर लोहिया, जाति प्रथा, समता प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पूर्वी लोहानीपुर, पटना संस्करण, १९८१, पृ. ४६.

७. जन, लोहिया अंक, नई दिल्ली, पृ. १२९.

८. राममनोहर लोहिया, समाजवाद की अर्थनीति, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, १९६८, पृ. ४.

९. ओंकार शरद, लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–२, संस्करण १९७८, पृ. १३५.